International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 10 Issue 06, June 2020,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

धर्मशास्त्रीय ग्रंथों में राजा के देवत्व की अवधारणा : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० प्रीतम कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर
प्राचीन इतिहास विभाग
काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय ज्ञानपुर,भदोही ।

सारांश :

प्रस्तुत लेख में प्राचीन भारतीय धर्मशास्त्रीय ग्रंथों के आलोक में 'राजपद' के दैवी स्वरूप का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन में राजा को केवल एक प्रशासक न मानकर उसे देवताओं के अंशों से निर्मित एक विशिष्ट सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। मनुस्मृति, नारदस्मृति, महाभारत (शांतिपर्व) और परवर्ती अभिलेखीय साक्ष्यों के माध्यम से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि राजा का देवत्व किस प्रकार सामाजिक व्यवस्था, धर्म की रक्षा और प्रजा के कल्याण का आधार था। यह अध्ययन सिद्ध करता है कि राजा की दैवी उत्पत्ति का सिद्धांत वास्तव में राजपद की गरिमा और उसके नैतिक उत्तरदायित्वों को पुष्ट करने का एक माध्यम था।

कीवर्ड्स (Keywords)
राजत्व का दैवी सिद्धांत ,धर्मशास्त्र , मनुस्मृति , राजधर्म , लोकपाल , महाभारत , शांतिपर्व , प्रजा-रक्षण

प्रस्तावना :

प्राचीन भारतीय राजनीतिक दर्शन में राज्य की उत्पत्ति और राजा की स्थिति एक अत्यंत महत्वपूर्ण विषय रही है। भारतीय मनीषियों ने समाज में व्याप्त 'अराजकता' और 'मत्स्य न्याय' (जहाँ बलवान निर्बल को सताता है) को समाप्त करने के लिए एक ऐसी सत्ता की परिकल्पना की, जो मानवीय होकर भी दैवी शक्ति से संपन्न हो। इसी पृष्ठभूमि में 'राजा के देवत्व' की अवधारणा का उदय हुआ।

'राजा के देवत्व' की अवधारणा

धर्मशास्त्रीय ग्रंथों के अनुसार, राजा मात्र एक साधारण मनुष्य नहीं है, अपितु वह आठ लोकपालों के दिव्य तेज का पुंज है। मनु से लेकर महाभारत के रचयिताओं तक, सभी ने इस बात पर बल दिया है कि राजा की आज्ञा का उल्लंघन ईश्वर की अवज्ञा के समान है। जहाँ एक ओर यह सिद्धांत राजा को सर्वोच्च सम्मान प्रदान करता है, वहीं दूसरी ओर उसे 'धर्म' के अधीन रखकर लोक-कल्याण के प्रति जवाबदेह भी बनाता है। वर्तमान आलेख का मुख्य उद्देश्य इन्हीं धर्मशास्त्रीय साक्ष्यों का विश्लेषण कर राजा के दैवी स्वरूप और उसकी सामाजिक प्रासंगिकता को समझना है।

राजपद की महत्ता को स्पष्ट करने के लिए भारतीय विद्वानों ने राजा को देवता का अंश बताया है। राजा के दैवी स्वरूप की मान्यता भारतीय साहित्य में आदिकाल से रही है, जिसे धर्मशास्त्रकारों ने भी स्वीकार किया है। धर्मशास्त्रीय ग्रंथों में राजा की दैवी शक्ति का प्रतिपादन किया गया है। प्रमुख धर्मशास्त्रकार मनु ने राजा को प्रभु द्वारा उत्पन्न माना है। उनकी यह स्पष्ट मान्यता है कि ईश्वर ने इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्र, कुबेर आदि देवताओं के सारभूत अंशों के सम्मिश्रण से राजा की सृष्टि की है। मनु ने राजा को दैवी प्रतिभा से सम्पन्न सिद्ध करने के लिए इन्द्र आदि श्रेष्ठ

International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 10 Issue 06, June 2020,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

देवताओं के अंशभूत होने के कारण उसे मानव से श्रेष्ठ बतलाया है तथा उसके दैवी रूप में क्रियाशील गुणों का उल्लेख कर राजा को 'सर्वतेजोमय' कहा है। मनु का तो यहाँ तक कहना है कि राजा पृथ्वी पर मनुष्य के रूप में देवता है। अतः, बालक राजा की भी अवमानना नहीं की जानी चाहिए।

नारदस्मृति से भी राजा के देवत्व की पुष्टि होती है। नारद ने लिखा है कि राजा के रूप में इन्द्र स्वयं पृथ्वी पर विचरण करता है। उसकी (राजा की) आज्ञा का उल्लंघन करके मनुष्य पृथ्वी पर नहीं रह सकता। राजा सर्वशक्तिमान है, वही रक्षक और सब पर कृपालु है। अतः राजा जो कुछ भी करता है वह सम्यक ही रहता है। एक तरह से मनु के बालक राजा की अवमानना न करने के कथन को समर्थन देते हुए नारद ने भी लिखा है कि जिस प्रकार दुर्बल पति को भी पत्नी द्वारा सम्मान मिलता है, उसी प्रकार गुणहीन शासक (राजा) को भी प्रजा द्वारा सम्मान मिलना चाहिए।

बृहत्पराशर संहिता में भी राजा को सर्वश्रेष्ठ देव मानकर उसे पूज्य बताया गया है। इसे ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, यम, कुबेर, वायु आदि के अंशों से निर्मित माना गया है। राजा की शम्भू आदि देवताओं से तुलना कर इस ग्रंथ में उसे मनुष्यों का (कर्मानुसार) हर्ता, कर्ता और हन्ता बताया गया है। नारद के समान ही पराशर ने भी राजा के देवत्व को बल प्रदान करने के लिए यह तर्क दिया है कि सर्वगुणहीन राजा की भी प्रजा द्वारा उसी प्रकार से पूजा करनी चाहिए, जैसे कि पत्नी अपने गुणहीन पति को भी सदैव पूजती रहती है।

धर्मशास्त्र के पूर्ववर्ती तथा परवर्ती ग्रंथों में भी विभिन्न प्रकार के सांकेतिक दृष्टांतों से राजा को देवता के रूप में प्रतिपादित किया गया है। ऋग्वेद में वरुण ने राजा के रूप में अपने को इन्द्र, अदिति का पुत्र, विशाल स्वर्ग एवं पृथ्वी आदि अनेक स्वरूपों वाला कहा है। अथर्ववेद में आया है कि— "हे राजा! तुम्हें सभी चाहें, तुम्हारे हाथों से राज्य न छीना जा सके तथा तुम इन्द्र के समान इस विश्व में सुस्थिर रहो।" शतपथ ब्राह्मण में राजा को प्रजापति के प्रतिनिधि के रूप में उल्लिखित किया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में राज्याभिषेक सम्बन्धी मंत्रों में अग्नि, गायत्री, सरस्वती तथा बृहस्पति आदि देवताओं से राजा के शरीर में प्रवेश करने की प्रार्थना की गयी है।

महाभारत के शांतिपर्व (अध्याय 59 एवं 67) में राजत्व के उद्गम की जो चर्चा की गयी है, उससे यह स्पष्ट होता है कि राजा को स्वयं ईश्वर द्वारा निर्मित राजपद पर प्रतिष्ठित किया गया। 59वें अध्याय में भीष्म ने युधिष्ठिर द्वारा राजा की उपाधि के उद्गम तथा शासन शक्ति के विषय में पूछे गये प्रश्न का स्पष्टीकरण देते हुए उत्तर दिया है कि कृतयुग के उपरांत समाज में अव्यवस्था उत्पन्न हो गयी। फलस्वरूप देवों को आहुतियाँ मिलनी बन्द हो गयीं और वे ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा ने विश्व के कल्याणार्थ सर्वोत्तम ज्ञानकोष के रूप में एक ऐसे महान ग्रंथ का प्रणयन किया जिसमें मानव जीवन के अस्तित्व के चार लक्ष्य प्रतिपादित किये गये। तदुपरान्त देवगण भगवान विष्णु के पास जाकर मनुष्यों में सर्वोत्तम व्यक्ति को राजा बनाने का अनुनय करने लगे। विष्णु ने अपने मन से विरजा नामक पुत्र उत्पन्न किया, परन्तु उसने राजा बनने से इंकार कर दिया। इसी विरजा की पाँचवीं पीढ़ी में उत्पन्न धर्मविनाशक वेन की ब्राह्मणों ने हत्या करके उसकी बायीं भुजा को मथकर सुन्दर सुसज्जित, वेद-वेदांग एवं दण्डनीति में पारंगत पृथु को उत्पन्न किया। उसे राजपद के कुछ कर्तव्यों का बोध कराकर देवों और ऋषियों ने पृथु को प्रजा रक्षणार्थ राजपद प्रदान किया। इसी समय विष्णु पृथु के शरीर में यह कहकर प्रविष्ट हो गये कि "हे राजा! तुम्हारी आज्ञा के विरुद्ध कोई नहीं जाएगा।" ऐसी दशा में लोगों ने राजा को देवतुल्य मानकर उसका उसी रूप में सम्मान करना प्रारम्भ कर दिया।

कुछ नामभेद के साथ शांतिपर्व के 67वें अध्याय में भी राजा की दैवी उत्पत्ति का समर्थन किया गया है। यहाँ विवरण प्राप्त होता है कि देवों द्वारा प्रजा की रक्षा हेतु एक उत्तम राजा की उत्पत्ति का निवेदन करने पर ब्रह्मा ने मनु को उत्पन्न किया। मनु ने ब्रह्मा को मध्यस्थ मानकर प्रजा से कुछ शर्तों पर समझौता कर राजपद स्वीकार किया। राजा की दैवी उत्पत्ति की पुष्टि शांतिपर्व के अध्याय 12 में भी की गयी है, जहाँ उतथ्य मान्धाता से कहते हैं कि विधाता ने दुर्बल प्राणियों की रक्षा के लिए ही बल-सम्पन्न राजा की सृष्टि की है— "दुर्बलार्थ बलं सृष्टं धात्रा" (शांतिपर्व, 12.11)। उसी पर्व के 122वें अध्याय में, जहाँ दण्ड की उत्पत्ति का वर्णन है, यह भी बताया गया है कि अराजकता के दोषों को

International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 10 Issue 06, June 2020,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

दूर करने के अभिप्राय से भगवान शूलपाणि (शंकर) ने भिन्न-भिन्न वर्गों के राजाओं की सृष्टि की थी और उन्होंने ब्रह्मा के छोटे पुत्र क्षुप को सम्पूर्ण प्रजाओं तथा धर्माचारियों का राजा बनाया था।

महाभारत के उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि राजा की उत्पत्ति दैवी थी। यह सत्य है कि इन अध्यायों के वृत्तान्तों में आपस में अन्तर है— यथा, अध्याय 59 में विष्णु को राजा का सृष्टिकर्ता माना गया है तो अध्याय 67 और 122 में क्रमशः ब्रह्मा और शिव को। इसी प्रकार अध्याय 59 में प्रथम राजा वेन अथवा पृथु हैं तो अध्याय 67 और 122 में क्रमशः मनु और क्षुप। फिर भी ये समस्त वृत्तान्त राजा की दैवी उत्पत्ति पर ही प्रकाश डालते हैं। इसी क्रम में शांतिपर्व में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि दैवी गुणों के कारण ही लोग राजा के नियन्त्रण में रहते हैं। प्रजा को यह निर्देश दिया गया है कि समृद्धि और शांति के आकांक्षी व्यक्ति को इन्द्र के समान ही राजा का सम्मान करना चाहिए।

महाभारत में उल्लिखित राजा के रूप में मनु की दैवी उत्पत्ति का समर्थन धर्मशास्त्रकालीन ग्रन्थ पञ्चतन्त्र में भी किया गया है। वहाँ राजा को देवता के रूप में प्रदर्शित करते हुए कहा गया है कि राजा सर्वदेवमय है, इसलिए उसे देवता की भाँति देखें। जो राजा और देवताओं के समक्ष थोड़ा भी असत्य कहता है, वह कितना भी बड़ा क्यों न हो, शीघ्र नष्ट हो जाता है।

अभिलेखीय साक्ष्य भी इस बात की पुष्टि करते हैं कि राजा के दैवी स्वरूप से सम्बन्धित मत व्यवहार जगत में भी अपनाया जाता था। उदाहरणार्थ, मौखरि वंश के ईशानवर्मन की चक्रधर विष्णु से, प्रभाकरवर्धन की सूर्य से, राज्यवर्धन की कुबेर, वरुण, इन्द्रादि से और हर्ष की शिव (महेश्वर) से गुणों के आधार पर विभिन्न अभिलेखों में तुलना की गयी है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अन्य प्राचीन ग्रंथों की भाँति धर्मशास्त्रीय ग्रंथों में भी राजा को देवता का अंश मानकर उसके देवत्व को मान्यता प्रदान की गयी है। इस सिद्धान्त के पोषण का मूल उद्देश्य राजपद की गरिमा को बढ़ाना है। सम्भवतः इसी उद्देश्य से मनु ने यह कहा है कि राजा को अशौच (सूतक) नहीं होता क्योंकि वह आठ लोकपालों के शरीर को धारण करता है। 'मन्वर्थ मुक्तावली' नामक टीका में इस सम्बन्ध में उल्लेख है कि मनुष्यों का जो शौचाशौच है, वह लोकपालों द्वारा ही प्रभावित एवं विनष्ट होता है; अतः शौचाशौच के विनाशक लोकेश्वर स्वरूप राजा को अशौच कैसे हो सकता है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय धर्मशास्त्रीय ग्रंथों में राजा के देवत्व की अवधारणा केवल राजा की निरंकुशता का समर्थन नहीं थी, बल्कि यह राजपद की पवित्रता और सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने का एक सशक्त माध्यम थी। मनु, नारद और पराशर जैसे विचारकों ने राजा को आठ लोकपालों के अंशों से निर्मित मानकर उसे दैवी तेज से संपन्न बताया। महाभारत के शांतिपर्व के उदाहरण यह सिद्ध करते हैं कि अराजकता के नाश और धर्म की स्थापना के लिए ही ईश्वर ने राजपद का सृजन किया।

यद्यपि विभिन्न ग्रंथों में सृष्टिकर्ता (विष्णु, ब्रह्मा या शिव) और प्रथम राजा (पृथु, मनु या क्षुप) के नाम में भिन्नता मिलती है, किंतु सभी का मूल स्वर एक ही है—राजा का स्वरूप दिव्य है। अंततः, राजा के देवत्व का यह सिद्धांत उसे असीमित अधिकार देने के साथ-साथ प्रजा-रक्षण और धर्म-पालन के महान उत्तरदायित्वों से भी बांधता है। अभिलेखीय साक्ष्य इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि यह अवधारणा केवल ग्रंथों तक सीमित न रहकर भारतीय राजनैतिक व्यवहार का अभिन्न अंग रही है।

International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 10 Issue 06, June 2020,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मनुस्मृति (मन्वर्थमुक्तावली टीका सहित): कुल्लूक भट्ट।
2. महाभारत (शांतिपर्व): गीता प्रेस, गोरखपुर।
3. नारदस्मृति: सं. जे. जोली।
4. पञ्चतन्त्र: विष्णु शर्मा।
5. बृहत्पराशर संहिता: प्राचीन धर्मशास्त्रीय संस्करण।
6. ऐतरेय एवं शतपथ ब्राह्मण: वैदिक साहित्य श्रृंखला।
7. प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति: के.सी. श्रीवास्तव (अभिलेखीय साक्ष्यों हेतु)।
8. ऋग्वेद संहिता: सायण भाष्य सहित, वैदिक संशोधन मण्डल, पुणे।
9. अथर्ववेद संहिता: श्रीपाद दामोदर सातवलेकर (सम्पादक), स्वाध्याय मण्डल, पारडी।
10. काणे, पी.वी.: 'धर्मशास्त्र का इतिहास', खण्ड ३, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
11. अल्तेकर, ए.एस.: 'प्राचीन भारतीय शासन पद्धति', मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
12. जायसवाल, के.पी. : 'हिन्दू राजतन्त्र', चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी।